



National Journal of Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177

NJHSR 2026; 1(66): 70-74

© 2026 NJHSR

www.sanskritarticle.com

नीशूदेवी

शोधच्छात्रा,
वी एस एस डी कालेज कानपुर,
उत्तर प्रदेश

शोध पर्यवेक्षक -

प्रोफेसर प्रदीप कुमार दीक्षित
संस्कृत विभाग,
वी एस एस डी कॉलेज, कानपुर

Correspondence:

नीशूदेवी

शोधच्छात्रा,
वी एस एस डी कालेज कानपुर,
उत्तर प्रदेश

सांख्य योग दर्शन में चरित्र निर्माण की अवधारणा

नीशूदेवी, प्रोफेसर प्रदीप कुमार दीक्षित

शोध सारांश:

प्रस्तुत शोध सांख्य एवं योग दर्शन के परिप्रेक्ष्य में चरित्र निर्माण की अवधारणा का तात्विक, मनोवैज्ञानिक और व्यावहारिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। पाश्चात्य मॉडलों के विपरीत, जहाँ चरित्र निर्माण को सामाजिक अनुकूलन और व्यवहार संशोधन तक सीमित रखा जाता है, सांख्य-योग परंपरा इसे अविद्या (अज्ञान) के नाश और आत्म-साक्षात्कार की गहन आध्यात्मिक यात्रा के रूप में परिभाषित करती है।

सांख्य दर्शन का द्वैतवादी ढाँचा (पुरुष-प्रकृति) तथा पञ्चीस तत्त्वों का सिद्धांत मानव अन्तःकरण (बुद्धि, अहंकार, मन) की संरचना को स्पष्ट करता है। त्रिगुण सिद्धांत (सत्व, रजस, तमस) व्यक्तित्व एवं व्यवहार का मूलाधार है—सत्व प्रधान व्यक्ति नैतिक, शांत एवं विवेकशील होता है; रजस महत्वाकांक्षा एवं क्रियाशीलता का स्रोत है किंतु असंतुलन में चिंता एवं आवेग उत्पन्न करता है; तमस जड़ता, अज्ञान एवं अवसाद का कारण है। आधुनिक मनोविज्ञान (ब्रिग फाइव मॉडल, फ्रायड का मनोविश्लेषण) के साथ त्रिगुणों का तुलनात्मक विश्लेषण नैदानिक प्रासंगिकता को प्रमाणित करता है—व्यक्तित्व विकारों (अवसाद, चिंता) में रजस और तमस की प्रधानता पाई गई है।

अष्टांग योग के प्रथम दो अंग—यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह) और नियम (शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान)—चरित्र निर्माण का अनुप्रयुक्त विज्ञान हैं। ये सामाजिक एवं व्यक्तिगत अनुशासन के सार्वभौमिक सिद्धांत हैं। इसके अतिरिक्त, चित्त प्रसादन हेतु मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा का भावनात्मक अभ्यास मानसिक स्वास्थ्य एवं सामाजिक सामंजस्य स्थापित करता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020) में भारतीय ज्ञान परंपरा के एकीकरण के संदर्भ में यह दर्शन आधुनिक शिक्षा, नैदानिक मनोविज्ञान एवं मूल्य शिक्षा के लिए अत्यधिक प्रासंगिक है। सांख्य-योग चरित्र निर्माण का मॉडल न केवल नैतिक व्यक्ति का निर्माण करता है, बल्कि मानव चेतना के परम पुरुषार्थ—स्वरूपप्रतिष्ठा—का मार्ग प्रशस्त करता है।

कुंजी शब्द:

सांख्य, योग, चरित्र निर्माण, त्रिगुण, यम-नियम, अष्टांग योग, विवेकख्याति, कैवल्य, भारतीय ज्ञान परंपरा, NEP 2020, नैदानिक मनोविज्ञान।

प्रस्तावना:

भारतीय दार्शनिक परंपरा में सांख्य और योग दर्शन को दो पृथक किंतु पूर्णतः पूरक प्रणालियों के रूप में स्वीकार किया गया है, जो मानव जीवन, चेतना और ब्रह्मांडीय यथार्थ की सबसे सूक्ष्म और वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। जहाँ महर्षि कपिल द्वारा प्रतिपादित सांख्य दर्शन ब्रह्मांड और मानव अस्तित्व की तात्विक और सैद्धांतिक आधारशिला निर्मित करता है,

वहीं महर्षि पतंजलि द्वारा संकलित योग दर्शन उस तात्विक ज्ञान को आत्मसात करने और उसे प्रत्यक्ष अनुभूति में बदलने का एक व्यवस्थित, व्यावहारिक और मनोवैज्ञानिक मार्ग प्रशस्त करता है। आधुनिक संदर्भों में जब हम 'चरित्र निर्माण' या 'व्यक्तित्व विकास' की बात करते हैं, तो पाश्चात्य दृष्टिकोण और आधुनिक मनोविज्ञान प्रायः इसे सामाजिक नैतिकता, व्यवहार संशोधन, अनुकूलन या आदतों के निर्माण तक सीमित रखता है। इसके विपरीत, सांख्य-योग दर्शन में चरित्र निर्माण की अवधारणा अत्यंत गंभीर, तात्विक, मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक है। यह केवल बाह्य आचरण को समाज के अनुकूल बनाने की यांत्रिक प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह मानव चेतना को अज्ञान (अविद्या) और भौतिक प्रकृति (प्रकृति) के बंधनों से मुक्त कर उसके मूल, शुद्ध स्वरूप में स्थापित करने की एक व्यवस्थित अंतरंग यात्रा है।

सांख्य दर्शन एक सुदृढ़ द्वैतवादी प्रणाली है, जो ऋग्वैदिक काल की वैचारिक जड़ों से विकसित होकर अपने परिपक्व रूप में सामने आई। सांख्य दर्शन इस सिद्धांत पर आधारित है कि "शून्य से कुछ भी उत्पन्न नहीं हो सकता और यह ब्रह्मांड की उत्पत्ति तथा मानव स्वभाव को दो स्वतंत्र, अनादि और शाश्वत सत्ताओं—'पुरुष' (विशुद्ध चेतना) और 'प्रकृति' (जड़ पदार्थ या ब्रह्मांडीय ऊर्जा)—के माध्यम से समझाता है। चरित्र निर्माण की रूपरेखा को समझने के लिए इस द्वैतवाद और मानव अन्तःकरण के विकास क्रम को समझना अनिवार्य है।

पुरुष और प्रकृति:

सांख्य के अनुसार, पुरुष अपरिवर्तनीय, निर्गुण, निष्क्रिय और विशुद्ध चेतना है। यह किसी भी कर्म, उसके फल (पाप-पुण्य), या भौतिक परिवर्तनों से लिप्त नहीं होता। इसके विपरीत, प्रकृति त्रिगुणात्मक (सत्व, रजस, तमस से युक्त) है "सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः।"

सांख्य दर्शन में प्रकृति और पुरुष के संयोग को 'पंगु-अंध न्याय' (लंगड़े और अंधे के दृष्टांत) द्वारा समझाया गया है।

प्रकृति अंधी है, उसमें क्रिया और गति तो है, किंतु दिशा या ज्ञान नहीं है। पुरुष पंगु है, उसमें देखने की क्षमता (चेतना) है, किंतु वह स्वयं कोई क्रिया नहीं कर सकता। जब विशुद्ध चेतना (पुरुष) स्वयं को अविद्या के कारण अंधी प्रकृति और उसके विकारों (शरीर, मन, भावनाएं) के साथ जोड़ लेती है, तब संसार चक्र और जीवन के दुःख उत्पन्न होते हैं।

सांख्य का यह ढांचा शिक्षार्थियों को अपने आंतरिक संविधान और यथार्थ की संरचना को समझने में सक्षम बनाता है, जिससे मानसिक अनुशासन, इंद्रिय नियंत्रण (इन्द्रिय-निग्रह) और तार्किक जांच को बढ़ावा मिलता है।

योग दर्शन में जीवन के चार सत्य और चरित्र निर्माण का उद्देश्य

सांख्य की इसी सैद्धांतिक पृष्ठभूमि को लेकर महर्षि पतंजलि ने योग दर्शन को एक चिकित्सीय और मनोवैज्ञानिक मॉडल के रूप में प्रस्तुत किया। योग में चरित्र निर्माण की आवश्यकता को जीवन के चार मौलिक सत्यों के माध्यम से समझाया गया है, जो बुद्ध के चार आर्य सत्यों के अत्यंत निकट हैं:

1. **हेयः** अर्थात् त्याज्य वस्तु। जीवन में आने वाला दुःख, जिसे भविष्य में भोगना है (**हेयं दुःखमनागतम्**), वही हेय है। चरित्र की दुर्बलताएं इसी दुःख को निमंत्रण देती हैं।
2. **हेयहेतुः** उपर्युक्त हेय या दुःख का कारण। पतंजलि के अनुसार, दुःख का मूल कारण शुद्ध आत्मा (पुरुष) का अशुद्ध प्रकृति से बने शरीर और मन के साथ संयोग होना है। यद्यपि प्रकृति में कोई बुराई नहीं है, परंतु जीवात्मा और प्रकृति के गुण-कर्म-स्वभाव में भेद होने के कारण यह संयोग दुःखदायी हो जाता है।
3. **हानः** हेय (दुःखों) से पूर्ण छुटकारा, अर्थात् मोक्ष या कैवल्य की प्राप्ति। अविद्या के अभाव से और विद्या की प्राप्ति से हेयहेतु (संयोग) का अभाव हो जाता है।
4. **हानोपायः** हान (मोक्ष) को प्राप्त करने का उपाय। मोक्ष का एकमात्र उपाय 'अविचल विवेकख्याति' (विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः) है। इन चार सत्यों को समझने के पश्चात यह स्पष्ट हो जाता है कि योगांगों (अष्टांग योग) का अनुसरण करते हुए, अपने चरित्र के दोषों को निकालकर अपने मूल स्वरूप में अवस्थित होना ही शिक्षा और जीवन का परम लक्ष्य है।

त्रिगुण सिद्धांत: व्यक्तित्व और व्यवहार का मूलाधार

सांख्य और योग दर्शन की सबसे महान और सर्वकालिक मनो-वैज्ञानिक देन 'त्रिगुण सिद्धांत' है।

प्रीत्यप्रीतिविषादात्मकाः प्रकाशप्रवृत्तिनियमार्थाः।

अन्योन्याभिभवाश्रयजननमिथुनवृत्तयश्च गुणाः॥

प्रकृति तीन मूलभूत गुणों से बनी है—सत्व रजस और तमस। ये तीन गुण ब्रह्मांड के हर भौतिक और मनोवैज्ञानिक तत्व में विद्यमान हैं, जिनमें हमारा शरीर, मन, विचार, भावनाएं और व्यवहार शामिल हैं। सांख्य के अनुसार, किसी भी मनुष्य का चरित्र कोई स्थिर या अपरिवर्तनीय वस्तु नहीं है, बल्कि यह इस बात पर निर्भर करता है कि किसी दिए गए समय में उसके भीतर कौन सा गुण प्रधान है और कौन से गुण दबे हुए हैं।

त्रिगुणों का विश्लेषणात्मक स्वरूप और चारित्रिक प्रभाव

1. **सत्व** : 'सत्व' शब्द प्रकाश, ज्ञान, शांति, और आनंद का प्रतीक है। "सत्त्वं लघु प्रकाशकमिष्टम्" सत्व प्रधान चरित्र वाला व्यक्ति अत्यंत शुद्ध, विचारशील, शांत, नैतिक, निःस्वार्थ और आध्यात्मिक रूप से उन्नत होता है। जब चित्त में सत्व गुण प्रधान होता है, तो व्यक्ति का दृष्टिकोण स्पष्ट होता है, उसमें रचनात्मकता और परोपकार की भावना प्रबल होती है। यह गुण व्यक्ति को सकारात्मक जीवन

परिणाम, उत्कृष्ट मानसिक स्वास्थ्य और आत्म-साक्षात्कार की ओर ले जाता है।

2. **रजसः** यह गुण गति, गतिविधि ऊर्जा, जुनून, और असहमति का प्रतीक है- **उपष्टम्भकं चलं च रज**। रजस प्रधान व्यक्ति अत्यंत महत्वाकांक्षी, इच्छाओं से भरा हुआ, कर्मठ और लक्ष्य-उन्मुख होता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से, रजस सत्व और तमस के बीच का एक महत्वपूर्ण सेतु है। जब रजस असंतुलित या अत्यधिक हो जाता है, तो यह व्यक्ति के चरित्र में क्रोध, तीव्र चिंता लोभ, विक्षेप और लालसा पैदा करता है, जो चरित्र में गंभीर अस्थिरता लाता है।

3. **तमसः** यह गुण जड़ता, अज्ञान अंधकार, आलस्य और विषाद का प्रतीक है। **“तमो गुरु वरणकमेव”**। तमस प्रधान व्यक्ति प्रायः भ्रमित, अवसादग्रस्त, नकारात्मक, सुस्त और स्वार्थी होता है। यह गुण मन को मोह और अज्ञान के आवरण से ढक देता है। चरित्र निर्माण की यात्रा अनिवार्य रूप से तमस से रजस और अंततः रजस से सत्व की ओर की ऊर्ध्वगामी यात्रा है। योग और आयुर्वेद के अनुसार, यदि कोई व्यक्ति तामसिक अवस्था में है, तो उसे सीधे सात्विक अवस्था में नहीं ले जाया जा सकता। पहले उसे शारीरिक आसनों, व्यायाम, नए स्थानों की यात्रा और हल्के भोजन के माध्यम से सक्रिय (रजस) करना होता है। इसके पश्चात्, रजस की अत्यधिक ऊर्जा को संतुलित करने के लिए ध्यान यम-नियम का पालन और निस्वार्थ कर्म के माध्यम से उसे सत्व की ओर ले जाया जाता है।

व्यक्तित्व विकारों में त्रिगुण का नैदानिक अनुप्रयोग

आधुनिक नैदानिक शोध यह प्रदर्शित करते हैं कि बॉर्डरलाइन पर्सनैलिटी डिसऑर्डर नार्सिसिस्टिक पर्सनैलिटी डिसऑर्डर और ऑब्सेसिव-कम्पल्सिव पर्सनैलिटी डिसऑर्डर जैसी मनोवैज्ञानिक विकृतियां रजस और तमस के चरम असंतुलन का परिणाम हैं। मनोरोग विज्ञान में त्रिगुणों को लेकर किए गए साक्ष्य-आधारित क्रॉस-सेक्शनल अध्ययनों में विशिष्ट मानसिक विकारों वाले रोगियों और स्वस्थ लोगों की तुलना की गई है। उदाहरण के लिए, चिंता पर किए गए एक अध्ययन (n = 30 रोगी, 30 स्वस्थ नियंत्रण), अवसाद पर एक अध्ययन (n = 20 रोगी, 20 स्वस्थ नियंत्रण), और मनोविकृति पर किए गए एक अध्ययन (n = 15 रोगी, 30 स्वस्थ नियंत्रण) में यह स्पष्ट रूप से पाया गया कि विकारग्रस्त रोगियों में तमस और रजस की प्रधानता थी, जबकि स्वस्थ नियंत्रण समूह में सत्व की प्रधानता थी। जब किसी रोगी में रजस बहुत अधिक होता है, तो वह आवेगी हो जाता है और ओसीपीडी या एंग्जायटी से ग्रस्त हो सकता है।

इस प्रकार, मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से चरित्र निर्माण केवल एक नैतिक उपदेश नहीं है, बल्कि यह सीधे तौर पर व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य से जुड़ा हुआ एक साक्ष्य-आधारित वैज्ञानिक ढांचा है।

अष्टांग योग: चरित्र निर्माण का अनुप्रयुक्त विज्ञान

सांख्य दर्शन के त्रिगुण सिद्धांत को व्यावहारिक रूप देने और चरित्र को परिष्कृत करने के लिए महर्षि पतंजलि ने 'अष्टांग योग' (आठ अंगों वाला योग) का प्रतिपादन किया। अष्टांग योग मानव व्यक्तित्व के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक पक्षों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। अष्टांग योग के प्रथम दो अंग— 'यम' (सामाजिक नैतिकता) और 'नियम' (व्यक्तिगत अनुशासन)— चरित्र निर्माण की आधारशिला हैं। प्राणिक हीलिंग के प्रणेता ग्रैंड मास्टर चोआ कोक सुई ने भी ध्यान और आध्यात्मिक अभ्यास में संलग्न प्रत्येक व्यक्ति के लिए चरित्र-निर्माण की मूल बातें (यम और नियम) का अभ्यास करने की आवश्यकता पर बल दिया है। यम सामाजिक नैतिकता और बाह्य सामंजस्य का विज्ञान यम मुख्य रूप से व्यक्ति और समाज के अंतर्संबंधों को स्वस्थ और संतुलित बनाते हैं। ये वे स्थायी मूल्य हैं जो समाज में अनैतिक आचरण, अनुशासन-हीनता और अराजकता पर रोक लगाते हैं।

1. **अहिंसा** : पतंजलि के अनुसार, केवल शारीरिक रूप से किसी की हत्या न करना या चोट न पहुँचाना ही अहिंसा नहीं है। मानसिक रूप से किसी का अहित न सोचना तथा वाणी से किसी को कष्ट न पहुँचाना (वाचिक हिंसा से बचना) भी अहिंसा का ही रूप है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से, जब कोई व्यक्ति मन, वचन और कर्म से पूर्ण अहिंसा में प्रतिष्ठित हो जाता है, तो उसके भीतर का उग्र 'रजस' शांत हो जाता है और उसके चारों ओर एक ऐसा आभा-मंडल बनता है।

2. **सत्य** : सत्य का अर्थ केवल झूठ बोलने से बचना नहीं है, बल्कि विचारों, शब्दों और कार्यों में पूर्ण एकरूपता लाना है। सांख्य के अनुसार, सत्य का पालन अविद्या के आवरण को हटाता है। योग शास्त्र कहता है कि जो व्यक्ति सत्य में प्रतिष्ठित हो जाता है, वह 'वाणी सिद्धि' प्राप्त कर लेता है और उसकी वाणी अमोघ हो जाती है।

3. **अस्तेय** : अशास्त्रीय या अन्यायपूर्ण विधि से दूसरे व्यक्ति के द्रव्य या वस्तु को ग्रहण न करना अस्तेय है। इसका गहरा मनोवैज्ञानिक अर्थ यह है कि व्यक्ति अपनी वर्तमान अवस्था से भागने या दूसरों के अधिकारों का हनन करने की इच्छा का त्याग कर दे। अस्तेय का अर्थ केवल भौतिक वस्तुओं की चोरी नहीं है, बल्कि विचारों और भावनाओं का अतिक्रमण न करना भी है।

4. **ब्रह्मचर्य** : इसका संकीर्ण अर्थ प्रायः केवल यौन संयम माना जाता है, लेकिन इसका व्यापक तात्विक अर्थ है 'ब्रह्म (परम सत्य) की ओर ले जाने वाला आचरण'। महात्मा गांधी के अनुसार, सत्य की खोज में किया जाने वाला सभी इंद्रियों का संयम ही वास्तविक ब्रह्मचर्य है।

5. **अपरिग्रह** : आवश्यकताओं से अधिक भौतिक वस्तुओं, धन, या यहाँ तक कि अनावश्यक विचारों और मानसिक विकारों का संचय न करना अपरिग्रह है। आधुनिक भौतिकवादी समाज में जहाँ उपभोग और 'रजस' हावी है, अपरिग्रह व्यक्ति को अनावश्यक चिंताओं और

असुरक्षा से मुक्त करता है। मस्तिष्क में निरर्थक ज्ञान और अनुपयोगी विचारों का संग्रह न करना भी अपरिग्रह का हिस्सा है जो मानसिक शुद्धि लाता है और चित्त को ध्यान के योग्य बनाता है।

नियम व्यक्तिगत अनुशासन और आंतरिक शुद्धि का मनोविज्ञान

जहाँ यम समाज के साथ हमारे संबंधों को सुधारते हैं, वहीं नियम हमारे स्वयं के साथ संबंधों को परिष्कृत करते हैं और व्यक्ति की आंतरिक अनुभूतियों में सामंजस्य स्थापित करते हैं।

1. **शौच** : शौच बाह्य और आंतरिक दोनों प्रकार का होता है। बाह्य शौच जल और पर्यावरण की स्वच्छता है, जबकि आंतरिक शौच चित्त से राग द्वेष ईर्ष्या (असूया), और अहंकार जैसे मानसिक मल को दूर करना है।

2. **संतोष**- वर्तमान में उपलब्ध साधनों और जीवन की परिस्थितियों में प्रसन्न रहना संतोष है। 'संतोष' प्रत्येक क्षण में संतुष्टि का अभ्यास करना है; यह सफलता और विफलता दोनों में समता बनाए रखने की कला है। यह बाह्य परिस्थितियों पर निर्भरता को खत्म करता है। असंतुष्ट व्यक्ति हमेशा निराश और चिंतित रहता है, जबकि संतोष सर्वोच्च सुख की अनुभूति कराता है।

3. **तप** : एक निश्चित लक्ष्य (विशेषकर आध्यात्मिक विकास) की प्राप्ति के लिए स्वेच्छा से, विवेकपूर्ण विश्लेषण के बाद शारीरिक और मानसिक कष्ट सहन करना तप है। स्वामी कृपालु इसे चरित्र निर्माण का वास्तविक विज्ञान कहते हैं। तप शरीर और बुद्धि की सुस्ती और जड़ता (तमस) को जलाकर हमारी शारीरिक और मानसिक शक्तियों को तेज और क्रियाशील बनाता है।

4. **स्वाध्याय** : श्रेष्ठ और पवित्र मोक्षशास्त्रों का अध्ययन तथा आत्म-निरीक्षण स्वाध्याय है। सांख्य दर्शन में, यह अपने आप से निरंतर यह पूछने की प्रक्रिया है कि "मैं कौन हूँ? मैं प्रकृति हूँ या पुरुष?" स्वाध्याय से साधक को अपने इष्ट देवता का सामीप्य प्राप्त होता है और यह साधक में मन को एकाग्र करने की अद्भुत क्षमता का विकास करता है।

5. **ईश्वर प्रणिधान** : अपने सभी कर्मों और उनके फलों को ईश्वर या परम गुरु को अर्पित कर देना और उनके प्रति पूर्ण समर्पण ईश्वर प्रणिधान है। महर्षि पतंजलि के अनुसार "समाधिसिद्धिर्ईश्वर-प्रणिधानात्" (ईश्वर प्रणिधान से समाधि की सिद्धि होती है)। आधुनिक मनोविज्ञान की भाषा में, यह अहंकार के पूर्ण समर्पण की प्रक्रिया है। जब 'मैं' करने वाला हूँ का भाव समाप्त हो जाता है, तो सभी मानसिक बाधाएं स्वतः नष्ट हो जाती हैं और साधक लंबे समय तक शांत और एकाग्र रहने में सक्षम हो जाता है।

स्वामी कृपालु ने सटीक कहा है कि "एक भी सद्गुण के फूल को दृढ़ता से पकड़कर, व्यक्ति यम और नियम की पूरी माला उठा सकता है"।

चित्त प्रसादन:

सांख्य और योग दर्शन में चरित्र निर्माण की एक अन्य अत्यंत महत्वपूर्ण और व्यावहारिक अवधारणा 'चित्त प्रसादन' है। एक स्थिर चरित्र के लिए यह जानना अत्यंत आवश्यक है कि व्यक्ति समाज में

दूसरों के साथ कैसा व्यवहार करता है। महर्षि पतंजलि ने योग सूत्र (1.33) में मानसिक शांति प्राप्त करने के लिए चार विशिष्ट भावनाओं के अभ्यास का निर्देश दिया है :

1. **मैत्री**: सुखी और सफल लोगों के प्रति मित्रता का भाव रखना। इससे ईर्ष्या (Jealousy) और द्वेष का नाश होता है।
2. **करुणा** : दुःखी और पीड़ित लोगों के प्रति दया और करुणा का भाव। यह क्रूरता और कठोरता को समाप्त करता है।
3. **मुदिता**: पुण्यात्माओं और अच्छे कार्य करने वालों को देखकर प्रसन्न होना। यह दोष-दृष्टि को मिटाता है।
4. **उपेक्षा** - दुष्ट और पापी लोगों के प्रति उदासीनता या उपेक्षा का भाव रखना। इससे क्रोध, तनाव और प्रतिशोध की भावना नहीं पनपती।

इस सूत्र का मनोवैज्ञानिक निहितार्थ अत्यंत गहरा और क्रांतिकारी है। आधुनिक मनोविश्लेषण प्रायः मानसिक बाधाओं से सीधे टकराव की वकालत करता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी चरित्र के इसी समभाव को 'समत्वं योग उच्यते' कहा गया है—अर्थात् जय-पराजय, लाभ-हानि, सुख-दुःख, निंदा और स्तुति में समान रहना। एक प्रसन्न और सम-चित्त ही एकाग्र होकर योग के उच्च स्तरों में प्रवेश कर सकता है।

सांख्य-योग आधारित शिक्षा: राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020) और आधुनिक प्रासंगिकता

प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली पूरी तरह से न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदांत जैसे दार्शनिक विद्यालयों के तात्विक, ज्ञानमीमांसक और मूल्यमीमांसक आधारों पर खड़ी थी। सांख्य दर्शन में शिक्षा का अंतिम उद्देश्य केवल आजीविका कमाना या भौतिक कौशल प्राप्त करना नहीं है, बल्कि 'विवेक' का विकास करना है ताकि व्यक्ति क्षणभंगुर जड़ प्रकृति और शाश्वत चेतन पुरुष के बीच भेद कर सके। सांख्य के अनुसार शिक्षा का मुख्य उत्तरदायित्व अविद्या का विनाश करना और मनुष्य को अज्ञान रूपी अंधकार से ज्ञान रूपी प्रकाश की ओर उन्मुख करना है।

पाश्चात्य व भारतीय शिक्षा दर्शन

हर्बर्ट स्पेंसर और जॉन रस्क जैसे पश्चिमी शिक्षाशास्त्रियों ने शिक्षा के उद्देश्यों में आत्म-संरक्षण, जीविकोपार्जन और नैतिकता को प्रमुखता दी है। परंतु उनका दृष्टिकोण प्रायः समाजशास्त्रीय और भौतिक है। इसके विपरीत, स्वामी विवेकानंद, महर्षि अरविन्द और महात्मा गांधी ने नैतिक शिक्षा और चरित्र निर्माण पर बल देते हुए इसे आत्म-साक्षात्कार का साधन माना है। पश्चिमी शिक्षा प्रणाली जहाँ तकनीकी विशेषज्ञता और तार्किक कौशल विकसित करने में सफल रही है, वहीं यह अक्सर पारिस्थितिक चेतना, नैतिक गहराई और आध्यात्मिक मूल्यों को विकसित करने में विफल रही है। एक ऐसा व्यक्ति जिसके पास वैज्ञानिक कौशल है, लेकिन चरित्र नहीं, वह समाज के लिए एक बड़ा खतरा सिद्ध हो सकता है।

विवेकख्याति और कैवल्य: चरित्र की सर्वोच्च और पारलौकिक परिणति

सांख्य और योग दर्शन में चरित्र निर्माण की यात्रा केवल एक अच्छा नागरिक बनने या सामाजिक नैतिकता के पालन पर समाप्त नहीं होती; इसका अंतिम लक्ष्य अत्यंत पारलौकिक है। सांख्य के अनुसार जीवन का लक्ष्य त्रिविध दुःखों (आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक) का आत्यंतिक और एकांतिक नाश है।

जब योगी यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा और ध्यान के निरंतर अभ्यास (योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये) से गुजरता है, तो चित्त की सभी अशुद्धियाँ (रजस और तमस का प्रभाव) नष्ट हो जाती हैं। इन अशुद्धियों के नाश से ज्ञान का प्रकाश फैलता है। यह प्रकाश अंततः 'विवेकख्याति' में बदल जाता है। विवेकख्याति वह अवस्था है जहाँ बुद्धि यह पूर्ण रूप से और स्पष्ट रूप से जान लेती है कि "मैं शरीर, मन या अहंकार नहीं हूँ; मैं अविद्या से परे विशुद्ध निर्गुण चेतना (पुरुष) हूँ"।

यह योग दर्शन के सबसे गूढ़ सूत्रों में से एक है, जो मानव चरित्र और चेतना के विकास की पराकाष्ठा को परिभाषित करता है। महर्षि पतंजलि कहते हैं: "सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यम्" (जब बुद्धि-सत्त्व की शुद्धि और पुरुष की शुद्धि समान हो जाती है, तब कैवल्य की प्राप्ति होती है)।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विस्तृत, तात्त्विक और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से यह अकाट्य रूप से स्पष्ट होता है कि सांख्य-योग दर्शन में 'चरित्र निर्माण' केवल बाह्य आचरण का आवरण या सामाजिक अनुबंध नहीं है, बल्कि यह मानव चेतना का आमूल-चूल रूपांतरण है। पाश्चात्य मॉडल जहाँ चरित्र को समाज के अनुकूल ढलने और नैतिक संहिताओं के पालन की प्रक्रिया मानते हैं, वहीं सांख्य-योग इसे अज्ञान (अविद्या) की परतों को उतारकर अपने शुद्ध स्वरूप (पुरुष) को खोजने की एक विशुद्ध वैज्ञानिक और आध्यात्मिक प्रक्रिया मानता है।

सांख्य का तात्त्विक ज्ञान और योग का व्यावहारिक अनुशासन मिलकर मानव चरित्र को अविद्या के अंधकार से निकालकर 'विवेकख्याति' और 'कैवल्य' के शाश्वत प्रकाश में स्थापित करते हैं, जो वस्तुतः मानव जीवन का चरम और परम पुरुषार्थ है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गौतम, अक्षपाद. (1939). *न्यायसूत्र* (वात्स्यायन भाष्य सहित) (गङ्गानाथ झा, अनु.). मोतीलाल बनारसीदास. (मूल रचना लगभग द्वितीय शताब्दी ई.पू.)
2. प्रशस्तपादाचार्य. (1915). *पदार्थधर्मसंग्रह* (श्रीधराचार्यकृत न्यायकन्द-ली सहित) (गङ्गानाथ झा, अनु.). पाणिनि कार्यालय.
3. झा, ग. (अनु.). (1915). *न्यायसूत्र: गौतमप्रणीत, वात्स्यायनभाष्य एवं उद्योतकरवार्त्तिक सहित* (खण्ड 1-4). मोतीलाल बनारसीदास.
4. चटर्जी, एस., और दत्ता, डी. (2015). *भारतीय दर्शन: एक परिचय* (8वाँ संस्करण). रूपा पब्लिकेशन्स.
5. दासगुप्ता, एस. (1922). *भारतीय दर्शन का इतिहास* (खण्ड 1). कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.

6. राधाकृष्णन, एस. (1923). *भारतीय दर्शन* (खण्ड 2). ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
7. शर्मा, सी. (2000). *भारतीय दर्शन का समालोचनात्मक सर्वेक्षण*. मोतीलाल बनारसीदास.
8. विद्याभूषण, एस. सी. (1921). *भारतीय तर्कशास्त्र का इतिहास: प्राचीन, मध्यकालीन एवं आधुनिक सम्प्रदाय*. मोतीलाल बनारसीदास.
9. मतिलाल, बी. के. (1997). *तर्क, भाषा और यथार्थ: भारतीय दर्शन एवं समकालीन प्रश्न* (द्वितीय संस्करण). मोतीलाल बनारसीदास.
10. मोहंती, जे. एन. (1992). *भारतीय चिन्तन में तर्क और परम्परा: भारतीय दार्शनिक चिन्तन की प्रकृति पर निबन्ध*. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
11. पॉटर, के. एच. (सम्पा.). (1977). *भारतीय दर्शनों का विश्वकोश: भारतीय तत्त्वमीमांसा एवं ज्ञानमीमांसा* (खण्ड 2). प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रेस.
12. राव, के. आर., और परांजपे, ए. सी. (2016). *भारतीय परम्परा में मनोविज्ञान*. स्प्रिंगर.